शिक्षा | हम इसे किस दिशा में ले जाना चाहते हैं?

हृदय कान्त दीवान

शिक्षा क्या है?

जब से 'सभी के लिए शिक्षा' और इसके उद्देश्य के बारे में चर्चा शुरू हुई, तभी से यह एक विवादास्पद मुद्दा रहा है, हालाँकि इसकी शुरुआत कुछ ही समय पहले हुई है। कोशिश यह थी कि शिक्षा को अर्थव्यवस्था और नौकरियों के लिए बच्चों को तैयार करने का एक ज़रिया बनाया जाए, लेकिन अब संवेदनशील और दूसरों की परवाह करने वाले मनुष्य (जो दूसरों का सम्मान करें और समानुभूति दिखा सकें) के विकास के साधन के रूप में भी शिक्षा पर ध्यान देने का प्रयास किया जा रहा है। इस ताने-बाने में हाथ से काम करने को सम्मान देने के अलावा सुरुचिपूर्ण क्षमताओं एवं सहयोग की भावना को बढ़ावा देने का रेशा भी जोड़ा जा रहा है। और यह केवल अनुभव या रचनात्मकता के लिए नहीं है, बल्कि इसलिए भी है कि बच्चे सामाजिक रूप से उपयोगी और उत्पादक गतिविधियों में भाग लेने में किसी तरह से सक्षम हों।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2005 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 ने इन सभी पहलुओं के साथ-साथ तर्कसंगत नैतिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भाईचारे की भावना और बहुविधता के सम्मान के विकास पर ज़ोर दिया है। सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए एक स्वीकृत प्रतिबद्धता भी रही है, जिसे एनईपी 2020 में दृढ़ता से दोहराया गया है।

इस सन्दर्भ में हमें यह देखना चाहिए कि शिक्षा किस तरह से दी जा रही है और कोविड-19 की स्थिति ने इसे कैसे बाधित किया है। इसके साथ ही हमें इस बारे में सुझाए गए विभिन्न तरीक़ों का विश्लेषण भी करना चाहिए कि भविष्य में यह कैसे विकसित होगी।

वैश्विक महामारी के दौरान लोगों ने एक-दूसरे के साथ जैसा व्यवहार किया और उससे हमने जो सबक़ सीखा, उस पर भी विचार करना होगा और यह देखना होगा कि शैक्षिक प्रक्रियाओं और संरचना के लिए इसका क्या अर्थ है।

वर्तमान स्थिति

यदि हम वर्तमान शिक्षा की प्रकृति की जाँच करें तो पाते हैं कि यह मुख्य रूप से शिक्षार्थियों की व्यक्तिगत प्रगति और पदानुक्रम में उनके ऊपर उठने पर ध्यान देती है। विज्ञापनों में भी यही दिखाया जाता है कि बच्चे को सबसे अच्छा बनना है, दूसरों से आगे जाना है भले ही इसके लिए उसे दूसरों के कन्धों पर चढ़कर आगे क्यों न बढ़ना पड़े। यह प्रक्रिया ऐसी नहीं है कि जो अधिकांश सीखने वालों को दूसरों के कष्टों के प्रति संवेदनशील बनाए या सामूहिक विकास और सहयोग का साधन बने। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि शिक्षार्थियों को अनुचित और अन्यायपूर्ण परिस्थितियों में अग्रसक्रिय हस्तक्षेप करने के योग्य बनाया जाए। इसे केवल व्यक्तिगत पलायन के साधन के रूप में देखा जाता है और इसलिए इसमें आकांक्षा यही रहती है कि बस, अर्थव्यवस्था में एक भूमिका मिल जाए।

> व्यक्तिगत रूप से पहले से अच्छा और बेहतर करने की इच्छा को अपने आप में दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता, लेकिन नैतिक तर्कसंगतता, भाईचारे की भावना और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में यह बात सामाजिक ताने-बाने और सभी के लिए साम्यता और न्याय के आन्दोलन के लिए अहितकारी है।

पहले शिक्षा न केवल अस्तित्व में थी बल्कि यह उन विभिन्न बच्चों को दी जाती थी, जिनकी परिस्थितियाँ असमान हो सकती थीं। इस प्रकार यह 'अन्यायपूर्ण और बहिष्कारात्मक' रही है, और अभी भी है इसने यथास्थिति को अनिवार्य रूप से बनाए रखा है केवल कुछ घटकों को छोड़कर जो एक स्तर से दूसरे स्तर पर चले गए। आरक्षण नीति के बावजूद शिक्षा में भागीदारी की संख्या कम है।

कुछ लोगों का तर्क है कि शिक्षा कई अन्य चीज़ों के बीच असमानता को बढ़ावा और उस पर ज़ोर देती रही है।

नई तालीम

नई तालीम आन्दोलन ने तत्कालीन स्कूली शिक्षा की यह कहते हुए आलोचना की, कि यह बहुत ज़्यादा अकादमिक है और इसमें हृदय को छोड़ दिया गया है। इसका मतलब है कि इसमें दूसरों के लिए समानुभूति की बात नहीं है। इसके साथ-साथ इसमें हाथों को भी छोड़ दिया गया है यानी कि इसमें हाथों से काम करने को महत्त्व नहीं दिया गया है। नई तालीम के अनुसार स्कूली शिक्षा ने ऐसे साक्षर लोगों का निर्माण किया जो वास्तव में शिक्षित नहीं थे। इसके समर्थकों का तर्क था कि शिक्षा ने बच्चों को अपने समुदाय से अलग कर दिया और उन्हें प्रतिस्पर्धी, आत्मोन्मुख और दूसरों का शोषण करने

वाला बनाया। साथ ही इस शिक्षा ने न केवल उन लोगों के प्रति अनादर को बढ़ावा दिया जो अपने हाथों से काम करते हैं, बल्कि जो काम वे करते हैं उसे भी अनादर की दृष्टि से देखा।

सभी नीतियों और पाठ्यचर्या रूपरेखा के अधिकांश दस्तावेज़ों ने नई तालीम की प्रासंगिकता और शिक्षा में दिमाग़, दिल और हाथों के विकास को शामिल करने की आवश्यकता को स्वीकार किया। जो उन्होंने स्वीकार नहीं किया वह यह दावा था कि सीखने का माध्यम उपयोगी, उत्पादक कार्य होना चाहिए। यह महसूस किया गया कि स्कूल के कार्यक्रम में, किसी न किसी रूप में, हाथों के साथ काम करना शामिल किया जाना चाहिए। इन दस्तावेज़ों ने स्कूल के कार्यक्रम में कई अन्य क्षेत्रों के एकीकरण की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया ताकि यह एक ऐसी प्रक्रिया न बन जाए जो बहुत ही दिमाग़ी और अकादमिक हो।

इस सबके बावजूद, आज हमारे पास एक ऐसी शिक्षा प्रणाली है जो प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देती है और अकादमिक परीक्षा के प्रदर्शन पर अधिकतम ज़ोर देती है, फिर चाहे वह व्यापक कोचिंग के माध्यम से हो या किसी अन्य सुविधा के माध्यम से।

पक्षपातपूर्ण प्रणाली

यह प्रणाली अनेक प्रकार से साधन-सम्पन्न और अभिजात्य वर्ग की पक्षधर है, हालाँकि ऐसा नहीं है कि वंचितों के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की कोई बात नहीं की गई है। पिछले तीन से चार दशकों में, इस सवाल के इर्द-गिर्द नीतिगत दस्तावेज़ों में काफ़ी चर्चा हुई है और कई कार्यक्रम और मिशन लागू किए गए हैं। इन प्रयासों पर कुछ संसाधनों (हालाँकि वे अपर्याप्त हैं) को आवंटित और ख़र्च भी किया गया है। इन प्रयासों ने कुछ उत्साही और प्रतिबद्ध व्यक्तियों को अपनी ओर खींचा है, जिन्होंने इन प्रयासों का समर्थन करने की कोशिश की है। यह प्रयास कई प्रकार के रहे हैं और कई अलग-अलग दृष्टिकोणों व तरह-तरह के निवेशों के साथ हुए हैं, लेकिन इन सभी में एक बात समान है कि यह काफ़ी हद तक इनपुट-संचालित हैं।

पिछली सदी के अस्सी और नब्बे के दशक के अन्त में और इस सदी के प्रारम्भिक कुछ वर्षों में, कुछ ग़ैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) द्वारा किए गए प्रयासों से प्रेरित होकर सामग्रियों, विधियों और प्रशिक्षण पर बहुत काम हुआ है। बाद में कुछ और संस्थाओं को साथ में लेकर सरकारी शिक्षा विभागों ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। इन सभी प्रयासों ने ग़ैर-सरकारी संगठनों के साथ कार्य करने वालों और कुछ शिक्षकों को उत्साहित और प्रेरित किया, लेकिन यह सब केवल तभी तक कारगर रहा जब तक व्यवस्था के बाहर के लोग इन परियोजनाओं के साथ जुड़े रहे। बड़े स्तर पर सरकारी व्यवस्था ने इसे स्वीकार नहीं किया और चूँकि समुदाय को स्पष्ट भूमिकाओं में शामिल करने के लिए कोई ख़ास प्रयास नहीं हुए थे, इसलिए इन कार्यक्रमों की ऊर्जा धीरे-धीरे कम होने लगी। इन प्रयासों के साथ गहन रूप से जुड़े शिक्षकों और व्यवस्था के अन्य कार्यकर्ताओं ने अपने कार्यों में इन विचारों के लिए जगह तलाशने और इन्हें आगे बढ़ाने की कोशिश की, लेकिन अक्षम और असमर्थकारी वातावरण के चलते यह सम्भव नहीं हो पाया।

टेक्नोलॉजी का नकारात्मक प्रभाव

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में शिक्षकों की भूमिका के मानवीय तत्व के महत्त्व को पहचानने की अक्षमता खेदजनक रही है। नीति और प्रणाली सुधार दस्तावेज़ों के समर्थन का दावा करने के बावजूद, शिक्षकों के पूरे समुदाय को उदासीन, अकादमिक रूप से कमज़ोर और ग़ैर-ज़िम्मेदार कहकर उनके महत्त्व को कम किया गया। शिक्षकों को परिणामों के लिए जवाबदेह तो माना गया लेकिन उन्हें पाठों और अधिगम (जो तेज़ी-से अधिकाधिक टेक्नोलॉजी-उन्मुख होते गए) के निर्माण और संचालन की स्वतंत्रता नहीं दी गई। स्कूल की पृष्ठभूमि, स्कूल में उपलब्ध शिक्षकों की संख्या और बच्चे नियमित रूप से स्कूल आ सकते हैं या नहीं, इन सब बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। दस्तावेज़ीकरण प्रमुख हो गया और शिक्षण गौण; शिक्षक कक्षा में जो कुछ करना चाहते थे, उसके बारे में वे न तो सोच सकते थे और न ही योजना बना सकते थे।

परीक्षण एक अतिरिक्त बोझ बन गया क्योंकि शिक्षकों को अपनी शिक्षण-योजना बनाने की अनुमति नहीं थी, बल्कि उन्हें तैयार सामग्री दी गई थी। डेटा के आसान संकलन के लिए बहु-विकल्पीय प्रश्न और ऐसी ही अन्य प्रक्रियाओं के ज़रिए परीक्षण करने की प्रक्रिया से दिए गए कार्यों की प्रकृति परिसीमित हो जाती है और इससे रटकर सीखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। यशपाल समिति (1993), 2005 में एनसीएफ और हाल ही में, एनईपी 2020 ने सुस्पष्ट रूप से इस बात को दोहराया है कि रटकर सीखने की प्रवृत्ति को पूरी तरह से दूर कर देना चाहिए। परीक्षण की ऐसी प्रणाली, जिसमें शिक्षक केवल परिणामों के बारे में सोचता हो और जिसमें बच्चा अप्रासंगिक हो, एक ऐसी प्रक्रिया की तलाश में लग जाती है जो रटकर सीखने को बढ़ावा दे ताकि परीक्षाओं को 'क्रैक' करने में विद्यार्थियों की मदद हो सके।

कोविड का प्रभाव

हो सकता है कि यह सारी बातें इस लेख के मुख्य विषय से असम्बद्ध लगें, लेकिन इनके बीच एक बहुत महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है : हम जिस स्थिति में हैं, उसे समझने के लिए पिछले अनुभवों की प्रासंगिकता। शिक्षकों की उपस्थिति के बावजूद

समाधान खोजने की मुहिम ने स्मार्ट क्लासेस, वॉयस या ऑडियो-वीडियो संकलित व्याख्यान, स्व-अधिगम सामग्री आदि के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया है। और अब यह नई परिस्थिति हमें एक ऐसी स्थिति में ले आई है जहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि शिक्षक पारम्परिक अर्थों में शिक्षण कब शुरू कर पाएँगे।

कोविड-19 वैश्विक महामारी ने सभी को दुखी किया है और सबके लिए अनेक कठिनाइयाँ पैदा की हैं। कई लोगों के लिए तो इसने अकल्पनीय विपत्ति पैदा की है। लोगों को उनकी नौकरियों व घरों से निकाल दिया गया। कई बार उन्हें एक वक़्त का भोजन भी नहीं मिला। कई लोगों को लम्बी-लम्बी यात्रा करके उन्हीं स्थानों को लौटने को मजबूर किया गया जहाँ से वे नौकरी की तलाश में निकले थे। उनकी दुर्दशा और उसके प्रति शिक्षित व साधन-सम्पन्न लोगों की प्रतिक्रिया ने समानुभूति की कमी की ओर संकेत किया और ऐसे लोगों के खुदग़र्जी और लोभी चरित्र को उजागर कर दिया।

यह नज़रिया इन लोगों के रवैये में न केवल उन ग़रीबों के प्रति दिखाई दिया, जो अपनी नौकरी और आश्रय के लिए इन पर निर्भर थे, बल्कि उन पड़ोसियों की ओर भी इनकी प्रवृत्ति ऐसी ही थी जो दुर्भाग्यवश इस बीमारी की चपेट में आ गए थे। फिर भले ही ऐसा इसलिए हुआ हो क्योंकि वे या तो बीमारों की मदद कर रहे थे या ऐसे लोगों की मदद कर रहे थे जिन्हें किसी न किसी रूप में मदद की ज़रूरत थी। जो समाज और व्यवस्था ऐसे लोगों की रक्षा कर रही थी, उन्हें सँभाल रही थी; उसी समाज का हिस्सा होने की भावना का पूर्ण और स्पष्ट अभाव देखने में आया।

दूरी

कुछ महीनों की इस छोटी-सी अवधि में, हमने देखा कि कैसे बार-बार दोहराया जाने वाला शब्द, 'सामाजिक दूरी' उन लोगों के लिए पहले से ही मौजूद तिरस्कार की भावना के साथ घुल-मिल गया; जो अभिजात्य वर्ग के आराम के लिए कार्य करते हैं, फिर चाहे वह घर के नौकर-नौकरानी हों या ऐसी ही पृष्ठभूमि से कोई और। समानुभूति और सामूहिक पहचान की भावना पूरी तरह से ग़ायब लग रही थी। सहयोग और सहकारिता की भावना भी नज़र नहीं आ रही थी, क्योंकि लोग अपनी सलामती के बारे में सोच रहे थे। वे अपने लिए ऐसा सुरक्षा कवच बनाने का प्रयास कर रहे थे जो उन्हें उनकी ज़रूरत की सारी चीज़ें प्रदान करे। लेकिन इन लोगों को उनकी कोई फ़िक्र नहीं थी जिन्होंने इसे सम्भव बनाने के लिए काम किया। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वे अपने बच्चों की पढ़ाई को लेकर चिन्तित थे और दूसरों पर अपनी बढ़त को तेज़ करने के प्रयास में थे। शिक्षा का विचार तो पहले से ही सिर्फ़ प्रवेश परीक्षाओं को 'क्रैक' करने तक सीमित हो गया है। इसलिए अन्य बच्चों के साथ बातचीत करने या मिलने-जुलने का कोई मतलब नहीं रह गया। धारणा यह थी कि बच्चे अपना समय बर्बाद कर रहे हैं और सीखने का अन्तर बढ़ता जा रहा है, इसलिए हमें नियमानुसार उनकी पढ़ाई शुरू कर देनी चाहिए।

यांत्रिक प्रतिक्रियाएँ

इस दबाव के चलते सभी निजी स्कूलों ने ऑनलाइन कक्षाएँ शुरू कर दीं। जहाँ एक ओर ऐसे अभिभावक थे जो अपने बच्चों को स्मार्टफ़ोन और असीमित इंटरनेट मुहैया करवा सकते थे, वहीं दूसरी ओर ऐसे लोग भी थे जो ऐसा करने में असमर्थ थे। जिनके पास नौकरी का कोई तात्कालिक ज़रिया नहीं था, उनके लिए फ़ोन के समय को लेकर प्रतिस्पर्धा करते सभी बच्चों के लिए एक स्मार्टफ़ोन और उसके साथ-साथ इंटरनेट भी उपलब्ध करवाना एक चुनौती थी।

ऑनलाइन कक्षाएँ लेने के लिए शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण सत्रों की तत्काल घोषणाएँ की गईं। फिर यह सारी बातें इस रूप में आगे बढ़ीं कि यह दीर्घकालिक समाधान है और स्वयं सीखने को बढ़ावा देने और मज़बूत करने की प्रणाली है। शिक्षा उद्योग ने ऐसे पाठों के बारे में सोचना शुरू कर दिया जिन्हें रिकॉर्ड करके विद्यार्थियों के साथ साझा किया जा सके; और शिक्षक पर पाठ तैयार करने और पढ़ाने का बोझ न डाला जाए क्योंकि वे ऐसा करने में सक्षम नहीं हैं। लॉकडाउन के बाद अब मानदण्ड यह है कि टेक्नोलॉजी का अधिक उपयोग किया जाए, मानव अन्त:क्रिया कम हो, पाठ्यक्रम में कटौती की जाए और जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, वैयक्तिक सीखना अधिक हो। समय और सामग्री में कटौती का तात्पर्य यह है कि हम अभी भी शिक्षार्थियों को अपने पाठ ख़ुद पढ़कर समझने में असमर्थ मानते हैं। शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विषय-सामग्री की व्याख्या करें और बच्चों को उत्तर बताएँ : और यह सब स्वयं सीखने के नाम पर !

नाज़ुक समय

तो, यह एक ऐसा समय है जब हमें इन प्रश्नों पर दोबारा विचार करना होगा : शिक्षा क्या है? शिक्षा किसलिए है? स्कूल क्यों होने चाहिए? ऑनलाइन कक्षाएँ क्या कर सकती हैं और उनसे कौन-सी चीज़ें छूट जाती हैं?

जिन थोड़े बहुत बच्चों से मैंने बात की है और जो कुछ अन्य लोगों ने बताया है, उससे पता चलता है कि जो बच्चे ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से पढ़ रहे हैं, वे सभी इससे नाख़ुश हैं। सबसे ज़्यादा उन्हें अपने साथियों की कमी खलती है, फिर चाहे वह कक्षा में हो या खेल के मैदान में। वे चाहते हैं कि स्कूल जल्दी से खुल जाएँ। उनकी बातों पर विचार करना तथा स्कूल की कमी महसूस करने के सम्भावित कारणों के बारे में सोचना बेहद ज़रूरी है। ज़्यादा-से-ज़्यादा टेक्नोलॉजी-

संचालित स्कूलों और अधिगम की ओर बढ़ने के लिए अचानक से जो ज़ोर दिया जा रहा है उस पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह इस बात पर ज़ोर देता है कि स्कूलों के अधिक टेक्नोलॉजी-संचालित बनने से शिक्षा के क्षेत्र में पहुँच की असमानता बढ़ती है। साथ ही यह दृढ़तापूर्वक इस बात का समर्थन करता है कि शिक्षा का यह रूप हर हाल में उस शिक्षा से निम्न है जिसमें स्कूलों एवं कक्षाओं में शिक्षकों और साथियों के साथ अन्त:क्रिया होती है।

शिक्षा की परिभाषा पर फिर से ग़ौर करना

शिक्षा की परिभाषा पर फिर से ग़ौर करने के अलावा, सबसे पहले यह सोचना आवश्यक है कि विकास किस तरह से संरचित है और दूसरी बात यह कि बच्चों और समुदाय के लिए शिक्षा को सार्थक बनाने में रही आई कमियों को हम कैसे व्यवस्थित करना चाहते हैं। इसके लिए हमें शैक्षिक प्रक्रिया में अधिक लोगों और बच्चों को शामिल करने के तरीक़ों पर विचार करना होगा और शिक्षा की भूमिका को, व्यक्तिगत प्रगति करने और लाभ को अधिकतम करने के साधन की बजाय, *सामूहिक विकास* और *जीविका* के एक भाग के रूप में बढ़ावा देना होगा।

अब समय आ गया है कि हम यह तय करें कि हमें क्या करना चाहिए। क्या हमें ऑनलाइन, दिमाग़ी और अन्यायपूर्ण शिक्षा प्रक्रियाओं की तरफ़ और अधिक बढ़ना चाहिए? या फिर हमें विपरीत दिशा की ओर बढ़ना चाहिए यानी एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की ओर, जिसमें अधिक निकटता और सम्पर्क है? यदि हम दूसरा रास्ता चुनते हैं, तो हमें छोटे-से-छोटे गाँवों में भी बच्चों को एक साथ लाने के तरीक़ों में निवेश करना होगा (मास्क, हाथ धोने और शारीरिक दूरी की सभी सावधानियों के साथ)। इन तरीक़ों के ज़रिए बच्चे एक-दूसरे के साथ हो सकते हैं और शिक्षक के साथ भी हो सकते हैं। यहाँ शिक्षक से तात्पर्य एक ऐसे वयस्क से है जो वार्तालाप और सीखने का सुगमीकरण कर सके और किताबों, पेंसिल और काग़ज़ के साथ काम कर सके।

सवाल यह है कि क्या हम अस्थायी 'मोहल्ला केन्द्रों' पर काम कर सकते हैं जो स्थानीय समुदायों के बच्चों को एक साथ लाते हैं ताकि वे एक-दूसरे के साथ मानवीयता के साथ पेश आना सीखें और तर्कसंगत नैतिकता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ मानवीय विविधता और संवैधानिक मूल्यों को साझा करें? यह वे मूल्य हैं जिनका एनईपी 2020 ने भी बहुत दृढ़ता से समर्थन किया है। इसी कठिन प्रश्न का उत्तर भविष्य में शिक्षा की दिशा निर्धारित करेगा।



हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के 'अनुवाद पहल' कार्यक्रम के साथ जुड़े हैं। वे 'एकलव्य' के संस्थापक समूह के सदस्य एवं विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार रहे हैं। वे पिछले 40 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पहलुओं पर अलग-अलग रूपों में कार्यरत हैं। विशेष तौर से वे शैक्षिक नवाचार और राज्य की शैक्षिक संरचनाओं के संशोधन के लिए किए जा रहे प्रयासों से सम्बद्ध रहे हैं। उनसे **hardy.dewan@gmail.com** पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि कहीं हम अपने बच्चों के मन में आर्थिक असमानता जैसा भाव तो नहीं ला रहे हैं? अपने स्कूल में हम हमेशा इस चीज़ से बचने की कोशिश करते आए हैं। हमने स्कूल में ऐसा माहौल बनाया है जिसमें सभी को सीखने, इस्तेमाल करने, खेलने आदि के लिए एक समान संसाधन दिए जाते हैं। कम आय के इस दौर में जिन अभिभावकों की पहली प्राथमिकता अपने बच्चों को भोजन और आश्रय प्रदान करना है, जिनके पास टीवी भी नहीं है, उनसे हम अपने बच्चों को स्मार्टफ़ोन दिलाने की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? क्या हम ऑनलाइन साधनों के माध्यम से शैक्षणिक सहायता के एक अस्थायी खालीपन को भरने के नाम पर सामाजिक न्याय और मानवतावादी मूल्यों के आदर्शों की अनदेखी कर रहे थे?

- अनिल एस अंगडिकी, 'कोविड-19 : सीखने के एक साधन के रूप में', पेज 47